International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 20-04-2025, Accepted: 21-05-2025, Published: 05-06-2025
Volume 7, Issue 1, 2025, Page No. 19-21

नब्बे के दशक में हिंदी साहित्यिक पत्रिका 'हंस' में प्रकाशित कविताओं में स्त्री विमर्श का स्वर

तुलसी छेत्री
शोधार्थी, हिंदी विभाग, जैन मानिद विश्वविद्यालय, बेंगलुरु, कर्नाटक, भारत

सारांश
'विमर्श' शब्द की परिभाषा ऐसे तो नितांत व्यापक है लेकिन इसे सरल सटीक और कम शब्दों में समझा जाए तो किसी भी विषय विशेष के बारे में गंभीरता से चिंतन, विवेचन और उसका विश्लेषण करना ही विमर्श है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक से ही स्त्री विमर्श ने वैश्विक, वैचारिक आंदोलन का स्वरूप ग्रहण किया, हालांकि भारतीय समाज में स्त्री विमर्श निश्चित रूप से पश्चिमी समाज से सर्वथा भिन्न है, भारतीय समाज में स्त्रियां विद्रोह करते हुए भी समाज से विमुख नहीं है। स्त्री विमर्श लिंग केंद्रित विषय है, जिसे स्त्री देह के साथ जोड़ कर देखा जाता रहा है, अकसर ये आरोप लगाया जाता है की यह पुरुष विरोधी है। इस अवधारणा को सही ढंग से समझा जाए तो हम पाएंगे की ये पुरुष प्रतिशोधात्मक न होकर, स्त्री का शोषण के विरुद्ध, समान अधिकार के लिए एक सकारात्मक प्रयास है। स्त्री विमर्श के केंद्र में, पितृसत्तामक सामाजिक व्यवस्था का विरोध कर, अपनी प्रतिष्ठा की स्थापना करना है।
हिंदी साहित्य और समाज में प्राचीन काल से ही स्त्रियों की भूमिका सीमित रही है। जब हम स्त्री विमर्श की बात करते हैं तो सबसे पहले जो खाका सामने उभर कर आता है वो हिंदी साहित्य द्वारा निर्मित है। साहित्य की हर विधा ने नारी विमर्श के मुद्दों पर अपनी कलम चलाई है, फिर चाहे वो लेख हो, कहानियां, कविताएं, निबंध या संपादकीय विचार आदि। प्रस्तुत शोध पत्र में, हिंदी साहित्यिक पत्रिका 'हंस' में नब्बे के दशक में प्रकाशित स्त्री विमर्श से सम्बंधित कविताओं पर विचार किया है।

मूल शब्दः स्त्री विमर्श, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, हिंदी साहित्य, समान अधिकार, कविता

आज अगर दलित विमर्श, स्त्री विमर्श उनके प्रति चेतना जैसे महत्वपूर्ण विषय व्यापक रूप में हमारे समक्ष है तो इसका सीधा श्रेय पत्र पत्रिकाओं को जाता है। 'हंस' पत्रिका ने स्त्री विमर्श को साहित्यिक जगत में चर्चा के केंद्र में लाने में अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया है साथ ही सभ्य समाज द्वारा नकारेसमाज के पहलू पर अध्ययन करते हुए अपनी पत्रिका में इसे यथा स्थान दिया। जैसा की ज्ञात होता है, वैदिक काल या उपनिषद काल में तो स्त्रियों को पुरुषों के बराबर दर्जा प्राप्त था, लेकिन समय के साथ साथ सामाजिक स्थितियों में बदलाव आने लगा। राजेंद्र यादव हंस के संपादकीय अंक में लिखते हैं।
"सही है कि शूद्रों की तरह औरत (अछूत) नहीं है, वह हमारे बीच और हमने से एक है और कुछ निर्णायक क्षणों या कक्षों और बेहद पवित्र पूजा अनुष्ठानों के सिवा उसे सब कहीं होने की छूट है। मगर जो चीज उसे शुद्र के साथ रखती है वह है उसकी देह जो मूलतः अपवित्र है।"[1]
दलित, दमित पिछड़े वर्ग, के साथ ही स्त्री भी इन विमर्शों के केंद्र में आ जाती है। यही कारण है की स्त्रीवाद के अंतर्गत सैद्धांतिक, रचनात्मक और व्यवहारिक सभी पक्षों पर एक साथ विचार किया जाना चाहिए जिससे वास्तविक स्थिति का अध्ययन हो सके। भारत में नारीवादी आंदोलन बीसवीं सदी के अंतिम दशक से आरंभ हुए, स्त्री मुद्दों पर स्त्री रचनाकारों ने कविता, कहानी, उपन्यास आत्मकथाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है एवं अपनी संवेदनशीलता से स्त्री जीवन के ऐसे अनछुए पन्नों से रूबरू करवाया की पुरुष रचनाकार भी धीरे–धीरे स्त्री मुद्दों पर संवेदनात्मक जुड़ाव प्रकट करने लगे।
पिछले एक दशक से साहित्यिक पत्रिका 'हंस' की पहचान मुख्य रूप में कथा पत्रिका के रूप में उभरी किंतु वैचारिक विमर्श 'हंस' के साथ हिस्सेदारी निभाते रहे। इस पत्रिका के अंतर्गत लेखक लेखिकाओं के स्त्री विमर्श से संबंधित विचार समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'हंस' में हाशिए के विमर्शों को केंद्र में रख कर, उनका अध्ययन, व्यवहारिकता के आधार पर समस्याओं का मूल्यांकन किया गया और इसके सैद्धांतिक पक्ष पर भी विस्तारपूर्वक चर्चा की जाती रही।

सन् १९९३ के हंस पत्रिका के अप्रैल अंक में कात्यायनी की कविता 'औरत और घर' तथा २००७ अप्रैल में प्रकाशित निर्मला गर्ग की 'हम तो सिर्फ़ शीशियां हैं खाली' इन दोनों ही कविताओं में विस्तृत रूप में नारी की व्यथा का वर्णन किया गया। इस कविता में उभरे विचार जीवन में घटित को बड़ी साफगोई से परिलक्षित करते है। कात्यायनी और निर्मला की कविताओं में यह विमर्श, चित्रित स्त्री के जीवन पर केंद्रित है। जो स्त्री की दशा में सुधार, स्त्री मुक्ति स्त्री सबलीकरण तथा स्त्रीवाद के रूप में हैं, वहीं दूसरी ओर महिला लेखन के संदर्भ में स्त्री अनुभव, स्त्री चेतना और स्त्री स्वतंत्रता की मांग की रूप में सामने आता है। स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक और पारिवारिक स्वतंत्रता ही नहीं बल्कि मानसिक और दैहिक स्वतंत्रता भी है, ऐसी स्वतंत्रता जो स्त्री को निर्णय लेने की आज़ादी प्रदान करे–

1. औरत और घर

"जब भी औरत निकलती थी सड़कों पर
जानता था वह, औरत का आना सड़क पर
खतरनाक होता है औरत के लिए
और पूरे समाज के लिए भी....
बस इतनी सी बात हुई थी की
उसका पासपोर्ट जब्त कर लिया गया
और दुनिया के हर घर की
नागरिकता के लिए उसे
अयोग्य घोषित कर दिया गया..."[2]

2. हम तो सिर्फ शीशियां हैं खाली

"मां ने सुभाषित सिखाये मुझे
उनकी माँ ने उन्हे
उनकी भी माँ ने उन्हे
इतिहास है यह लम्बा
कुछ लिखित
बहुत कुछ अलिखित

हम परिवार की ईंट नहीं हैं
उसमें दौड़ता रक्त भी नहीं
हम तो सिर्फ शीशियां हैं खाली"
सत्रह वर्ष गृहस्थी में खपने के बाद
एक स्त्री कहती है "[3]

हंस पत्रिका में स्त्री और दलित विमर्शों की श्रृंखला कई अंको तक चलती रही, कभी संपादकीय में तो कभी पाठकों या लेखकों की प्रतिक्रिया के रूप में हंस, ने कई विचारोत्तेजक बहसो को जगह देकर स्त्री विमर्श के सैद्धांतिक पक्ष को निर्मित किया। आज जो स्त्री लेखिकाओं की बृहत परंपरा हमें साहित्य के क्षेत्र में दिखती है, इसमें हंस पत्रिका और राजेंद्र यादव का उल्लेखनीय योगदान है। 'स्व' अनुभूति ने स्त्री के दर्द, को ही नहीं वरन विद्रोह, आक्रोश और उसके तीखे तेवर को साहित्य के माध्यम से उजागर किया है। 'हंस' में सहमतियों –असहमतियों को बराबर जगह मिलती रही। स्त्री लेखिका मृदुला गर्ग व राजेंद्र यादव के बीच निम्नलिखित पत्राचार इसका एक अच्छा उदाहरण है –
अप्रैल १९९३ के अंक में मृदुला गर्ग ने हंस के संपादक यादव जी को संबोधित करते हुए 'हर स्त्री दलित नहीं है' के शीर्षक से लिखा पत्र है, जिसमें उन्होंने 'हंस' के मार्च अंक में उन्हें संबोधित किए हुए संपादकीय के प्रति दुख व्यक्त करते हुए लिखा –
प्रिय यादव जी,
हंस के मार्च अंक में, मुझे संबोधित करके आपने जो संपादकीय लिखा है, उसे पढ़कर दुःख सिर्फ इसलिए हुआ क्योंकि आप ही के शब्दों में, 'मिसप्लेस्ड एंगर' यानी बंदर की बला तबेले के सिर का आदर्श उदाहरण है। न कही गई बातों की कल्पना करके या उनके 'देव दुर्लभ' अर्थ निकालकर अपनी वह सारी भड़ास निकाली है, जो स्त्री के विद्रोह ने आपके भीतर पैदा कर दी है।
"अगर सारी स्त्रियों को दलित बतलाने से चाहे, वो जिस वर्ग से हो आपका मर्दाना अहम् तुष्ट होता है तो जरूर शौक फ़रमाइये पर उनसे यह अपेक्षा मत कीजिये की वो आपके मालिकाना निष्कर्ष का आभ्यंतिकरण करके "हाय अबला जीवन तेरी कहानी" की तर्ज़ पर आंसू बहाती, निष्क्रिय पड़ी रहेंगी।"[4]
इस पत्र से स्पष्ट है की मृदुला गर्ग मानती है किसी विचार को विमर्श तक ले जाने से पूर्व ही लिंग के आधार पर हम पहले ही अपनी मानसिकता तय कर लेते है तो स्वाभाविक है की इसका असर विचारों में साफ दिखाई देगा।

सदियों से हिंदी साहित्य में स्त्रियों की भूमिका अत्यंत सीमित रही है, वर्तमान समय में ज्यों ज्यों साहित्य में प्रवेश कर स्त्री विमर्श के मुद्दों पर कलम चला रही है ,त्यों त्यों स्त्री पुरुष के संबंध को एक नए सिरे से समझने का प्रयास किया जा रहा है। मौन भी अभिव्यंजना है जैसी बातों को दरकिनार करते हुए, दोयम दर्जे को अस्वीकार करते हुए स्त्रियां अपने प्रति बरते गए व्यवहार, भेदभाव, अनुभूतियों को कलमबद्ध कर रही है और वो जब लिखती है तो अपने दृष्टिकोण से विश्वसनीय साहित्य की रचना करती है।
१९९७ अक्टूबर के अंक में आनंद संगीत की लिखी दो कविताएं प्रकाशित हुई, 'टेलविजन की लड़की' एवं 'मेरा नाम ज्योत्सना है' इन दोनो ही कविताओं में स्त्री के प्रति पुरुष मन की सहानुभूति और संवेदना प्रकट होती है। यह कविता स्त्री के प्रति पुरुष मन के नकारात्मक विचारों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करतें हुए सकारात्मक समाज की अपेक्षा करती है –
"अपने पति को चूमती हूं, वह सुंदर है, प्यारा है और
उसके मुंह से शराब की गंध
मेरे होंठो पर लिपस्टिक का निष्फल स्वाद
सो यह कुछ मिला– जुला वर्तमान मेरा है!" [5]

परंपरागत मान्यताएं, रूढ़ियां, पुरुष प्रधान समाज में होने वाले अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लिखित तथा कथित दोनों ही रूपों में स्त्रियां अब खुल कर अपनी राय रखने का साहस कर रही है एवं वहीं वैचारिक साम्य के अभाव में पुरुष से स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर रही है।
नब्बे के दशक में जब स्त्री विमर्श पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर जोर पकड़ रहा था, हिंदी साहित्य में नारीवादी लेखन के साथ ही 'हंस' में प्रकाशित स्त्री विमर्श से संबंधित कुछ कविताएं तो पुरुष कवियों के लिए 'कच्चा माल' का बोध करवाती प्रतीत होती हैं, जिन्हें वो अपने लेखनी में ढाल कर साहित्य में बेचने का कार्य करते हैं। इन कविताओं को पढ़ते हुए इस बात का बोध होता है की पुरुष कवि, समाज की स्त्रियों में मानसिक तौर पर गुलाम एवं पूर्वाग्रह सोच थोपने की कोशिश में लगे हुए हैं ताकि स्त्रियां प्रयास करने से पूर्व ही अपनी हार स्वीकार कर लें।
जैसे अगस्त – सितंबर १९९७ में प्रकाशित विनय सौरभ की कविता 'यह खरीद लीजिए प्लीज' (जो की टेलीविजन चैनल पर प्रसारित विज्ञापनों में स्त्रियों की भूमिका पर दंश करती है) और जून २०१० में महेश चंद्र पुनेठा की कविता 'बदल गया है जमाना'। दोनों कविता स्त्री देह को एक 'वस्तु' में परिवर्तित कर स्त्री मुक्ति का भ्रम पैदा करती हैं स्त्री को 'वस्तु' के रूप में बाजार द्वारा उपयोग करना स्त्री मुक्ति नहीं बल्कि स्त्री के उत्पीड़न के लिए नए तरीके का इजात करना है। बाजार के इस रूप को उसकी उपभोगितावादी संस्कृति के भीतर व्याख्यातित करने की जरूरत है। स्त्री मुक्ति का आदर्श रूप विज्ञापन में देह को प्रस्तुत करती स्त्री का सच नहीं है। इन दोनों ही कविताओं में कवि सच दर्शाते हुए स्त्री प्रश्नों की मूल भावना कहीं दूर चले जाते हैं ।

1. यह खरीद लीजिए, प्लीज!

"…. ये संस्कृति की भाषा में 'बाजार' थीं
बाजार की भाषा में उत्तेजना
विज्ञापन की भाषा में बाग का ताजापन थीं
ये नई बाज़ार – व्यवस्था का रूमान थी
बेहद शालीन ढंग से उच्चश्रृंखल होती स्त्रियां थी
……."[6]

2. बदल गया है जमाना

"अब भी नहीं कर सकती हो तुम
एक पुरुष से दोस्ती
ठीक ठीक उसी तरह
जैसे कि किसी स्त्री से
तुम चाहती हो दोस्ती करना
……
खोलने लगेंगे लोग
संबंधों की परतों के भीतर की परतें
लगी रहेंगी
छोटी– छोटी गतिविधियों पर भी नजर…"[7]

निष्कर्ष

इस तरह हम देखें तो नब्बे के दशक में जब वैश्विक स्तर पर हाशिए के समाज ने अपनी अस्मिता के पक्ष में आवाजें मुखर करनी शुरू की तो साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं ने नए विचारों को हाथों हाथ लिया। यह स्वाभाविक है की अपने शुरुआती दौर में किसी भी विचार को अपनी जगह बनाने के लिए पहले से स्थापित वर्चस्वशाली विचार के साथ संघर्ष करना पड़ता है। स्त्री चिंतकों ने भी यह किया और वाद विवाद संवाद के माध्यम से स्त्री विमर्श को साहित्य के केंद्र में ले आए। इसमें हम 'हंस' की भूमिका को नजरंदाज नहीं कर सकते। २०२२ में इसी भूमिका का

निर्वाह करते हुए 'हंस' पत्रिका ने 'स्त्री सृजन का सारा आकाश' नामक साहित्य उत्सव की श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए केवल स्त्री से संबंधित विषयों चाहे वो रंगमंच से जुड़े हो या दलित लेखिकाओं की पहचान से का सफलता पूर्वक आयोजन किया।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. तुम्हारे गले में किसकी आवाज है, उमा भारती? हंस, संपादकीय राजेंद्र यादव, अंक – मार्च १९९३, पृ. संख्या: ६
2. 'हम तो सिर्फ़ शीशियां हैं खाली' निर्मला गर्ग, हंस पत्रिका, अंक: अप्रैल २००७, पृ. संख्या –५०
3. औरत और घर, हंस पत्रिका, अंक: अप्रैल १९९३, पृष्ठ संख्या –४३
4. हर स्त्री दलित नहीं, मृदुला गर्ग, हंस पत्रिका, अंक –अप्रैल १९९३, पृ संख्या –६७
5. मेरा नाम ज्योत्सना है, आनंद संगीत, हंस पत्रिका, अंक: ३ अक्टूबर, वर्ष १२, पृष्ठ संख्या:६३
6. यह खरीद लीजिए, प्लीज! विनय सौरभ, हंस पत्रिका, अंक: १ अगस्त –सितंबर, वर्ष १९९७, पृष्ठ संख्या: १०३
7. बदल गया है जमाना, महेश चंद्र पुनेठा, हंस पत्रिका, अंक: ११, जून, वर्ष २०१०, पृष्ठ संख्या: ४९